www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-10* *October 2025***

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राष्ट्र–निर्माण की चुनौतियाँ

रणधीर कुमार

यूजीसी (राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा), एम.ए. (इतिहास), इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के सामने राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया अत्यंत जटिल और बहुआयामी चुनौतियों से भरी रही। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विविधताओं ने राष्ट्रीय एकता और स्थिरता को स्थापित करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं। संविधान निर्माण के माध्यम से लोकतांत्रिक ढाँचे की स्थापना की गई, परंतु उसके प्रभावी क्रियान्वयन में अनेक बाधाएँ सामने आईं। राजनीतिक स्थिरता, संस्थागत विकास और कानून व्यवस्था को मजबूत बनाना आवश्यक था। आर्थिक क्षेत्र में औद्योगीकरण की धीमी गति, कृषिगत समस्याएँ, वित्तीय संसाधनों की कमी और असमानता प्रमुख चुनौतियाँ रहीं। सामाजिक स्तर पर जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीय विविधताओं के कारण समरसता बनाए रखना कठिन था। महिलाओं, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों के सशक्तिकरण की आवश्यकता भी महसूस की गई। इसके साथ ही, आंतरिक सुरक्षा, क्षेत्रीय अस्थिरता और बाह्य संबंधों का संतुलन भी महत्वपूर्ण रहा। विज्ञान एवं तकनीक, शिक्षा और मानव संसाधन विकास ने राष्ट्र–निर्माण में सकारात्मक योगदान दिया, लेकिन डिजिटल विभाजन जैसी नई समस्याएँ भी उभरीं। समग्र रूप से, इन चुनौतियों के समाधान हेतु समावेशी नीतियाँ, सुदृढ़ संस्थाएँ और सामाजिक जागरूकता आवश्यक हैं, जिससे भारत एक स्थिर, समृद्ध और शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित हो सके।

मुख्य शब्द– राष्ट्र–निर्माण, राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक विकास, सामाजिक समावेशन, संविधान, विविधता, मानव संसाधन विकास ।

1. प्रस्तावना

स्वतंत्रता के उपरांत नई सरकार ने नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता की सुरक्षा की दिशा में कारगर कदम उठाए, किन्तु इन प्रयासों के सफल कार्यान्वयन में बाधाएँ भी उपस्थित रहीं। देश के विशाल क्षेत्र और बहु–सांस्कृतिक जनसंख्या ने राष्ट्रीय एकता व समृध्द लोकतंत्र के निर्माण को चुनौती दी। राजनीतिक स्थिरता का निर्धारण आधुनिक संस्थानों के सशक्तिकरण एवं सुचारु संचालन पर निर्भर था। संविधान निर्माण की प्रक्रिया का फलस्वरूप एक मजबूत संवैधानिक ढाँचा विकसित हुआ, परन्तु इसकी व्याख्या, कार्यान्वयन और संपुष्टि में सुनिश्चितता एवं स्थिरता लाने की आवश्यकता बनी रही। इस पिरामिड के भीतर विविध क्षेत्रीय, भाषाई एवं धार्मिक जातियों के बीच संवाद, सहिष्णुता और समानता बनाए रखने के प्रयास भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहे। उसे साथ–साथ व्यक्तिगत अधिकारों व कानूनी संस्थानों का निर्माण कर, स्वतंत्रता के प्रति समर्पित एक नागरिक समाज का निर्माण भी आवश्यक था। इन सबके बीच आर्थिक संरचना का पुनर्निर्माण, औद्योगिक विकास तथा वित्तीय संसाधनों का समुचित प्रबंधन भी निरंतर चुनौती रहा। इन सबमें संचार, शिक्षा, समाज सुधार और अधिकारों की रक्षा का समन्वय करने वाली व्यवस्था का विकास राष्ट्रीय स्शक्ति निर्माण की अनिवार्य शर्त बन गई। कुल मिलाकर, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए अपने स्वप्नों को वास्तविकता में परिणत करने का प्रयास किया, जो आज भी राष्ट्र–निर्माण के निरंतर संघर्ष और विकास का परिचायक है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया के समक्ष उपस्थित बहुआयामी चुनौतियों का समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस अध्ययन के अंतर्गत विशेष रूप से राजनीतिक स्थिरता, संस्थागत विकास तथा शासन–व्यवस्था की प्रभावशीलता का परीक्षण किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि लोकतांत्रिक ढाँचे की स्थापना के बाद किन–किन बाधाओं ने उसके सुचारु संचालन को प्रभावित किया। साथ ही, आर्थिक क्षेत्र में औद्योगीकरण की गति, कृषिगत संरचना की समस्याएँ, संसाधनों की उपलब्धता एवं असमानताओं का मूल्यांकन करना भी इस अध्ययन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक विविधताओं जैसे जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीय असमानताओं का राष्ट्र–निर्माण पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना इस शोध का एक प्रमुख लक्ष्य है। अध्ययन में संविधान, कानूनी व्यवस्था एवं व्यक्तिगत अधिकारों की भूमिका को भी समझने का प्रयास किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और संरक्षण किस प्रकार संभव हुआ। इसके साथ ही, आंतरिक सुरक्षा, क्षेत्रीय अस्थिरता तथा विदेश–नीति के संतुलन जैसी चुनौतियों का भी परीक्षण किया गया है। समग्र रूप से, यह अध्ययन राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को एक व्यापक दृष्टिकोण से समझने तथा उसके समाधान हेतु नीतिगत संकेत प्रदान करने का प्रयास करता है।

3. शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसके माध्यम से विषय के विभिन्न आयामों का गहन अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिनमें पुस्तकों, शोध पत्रों, जर्नल लेखों, सरकारी रिपोर्टों एवं ऐतिहासिक दस्तावेजों का व्यापक रूप से उपयोग किया गया है। उपलब्ध साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन करते हुए विभिन्न विद्वानों के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, जिससे विषय की व्यापक समझ विकसित की जा सके। इस शोध में गुणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसके अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पहलुओं का व्याख्यात्मक अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक पद्धति का भी प्रयोग किया गया है, जिससे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की परिस्थितियों एवं घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में समझा जा सके। इसके साथ ही, विभिन्न आयामों के बीच अंतर्संबंधों का विश्लेषण कर राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार, यह शोध पद्धति विषय की गहराई, व्यापकता और प्रासंगिकता को सुनिश्चित करती है।

4. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और स्वतंत्रता के बाद की परिस्थितियाँ

स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात् भारत विभिन्न अभूतपूर्व परिस्थितियों से घिरा था, जो उसे एक स्थिर एवं समृद्ध राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में चुनौतियों का सामना कर रही थीं। विभाजन की विभीषिका, व्यापक अराजकता व विस्थापन के साथ–साथ देश का सामाजिक एवं आर्थिक तंत्र भी प्रभावित था। स्वतंत्रता की विरासत में जीवित विभाजन–पिछड़ेपन, जनसंख्या का तीव्र वृद्धि एवं गरीबी जैसी जटिलताएँ आम जनता की जीवन गुणवत्ता को कम कर रही थीं। विकास की दिशा में कदम उठाने के बावजूद, संसाधनों का अभाव, बुनियादी ढाँचे का नुकसान एवं पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्र के बीच विकास का असमान वितरण उन बाधाओं में से थे, जिनसे राष्ट्र को निपटना पड़ा।

इसके अलावा, स्वतंत्रता के पश्चात् राष्ट्र के बीच संवैधानिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिरता स्थापित करना आवश्यक था। देश की विविधता को समेकित कर एक मजबूत राजनीतिक व्यवस्था विकसित करना एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। भारत का संविधान एक स्वतंत्र, विधायी और न्यायसंगत शासन का आधार बना, किंतु इसकी कार्यान्वयन प्रक्रिया जटिल थी। विभिन्न आदिवासी एवं प्रांतगत भाषाई समूहों की आकांक्षाओं को संतुष्ट करना, राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करना एवं स्थानीय स्वशासन को मजबूत बनाना भी प्रमुख मुद्दे थे।

सामाजिक स्तर पर, जाति, धर्म एवं क्षेत्रीय विभाजन की जटिलताओं ने राष्ट्र–निर्माण के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न कीं। सामाजिक बदलाव, शिक्षा का प्रसार, महिलाओं एवं वंचित वर्गों के अधिकार, तथा समानता का समावेशन सुनिश्चित करना महत्त्वपूर्ण कार्य था। कानून एवं नियम बनाकर इन विभाजनों को भागीदारी के अवसर देना, सामाजिक समरसता स्थापित करने का उद्देश्य था। इस क्रम में, भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वरूप एवं परिस्थितियाँ इसे एक समावेशी एवं सशक्त राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का आव्हान कर रही थीं, जिसे

सुव्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध कर आगे बढ़ाना आवश्यक था।

5. संस्थागत निर्माण और शासन–व्यवस्था की चुनौतियाँ

स्वतंत्रता के बाद भारत में संस्थागत निर्माण की प्रक्रिया व्यापक और जटिल थी, जिसमें कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सबसे पहले, संविधान निर्माण के दौरान मिली व्यापक भौगोलिक और सामाजिक विविधता के बावजूद एक मजबूत और स्थिर केंद्र सरकार का निर्माण करना अत्यंत आवश्यक था। इस प्रक्रिया में अनेक भौगोलिक, भाषाई, और सांस्कृतिक मतभेदों को समेट कर एक सर्वमान्य संविधान का निर्माण करना एक कठिन युद्ध था, जिसमें शासन व्यवस्था की आधारशिला रखी गई। साथ ही, स्वतंत्रता पश्चात् अनेक नई संस्थाओं का उदय हुआ, जिनमें राजनीतिक, न्यायिक और प्रशासनिक तंत्र शामिल हैं। इन्हें सुगठित और प्रभावी बनाने के लिए कुशल नेतृत्व, बेहतर संसाधनों और समुचित विधायी व्यवस्था की आवश्यकता थी।

राजनीतिक स्थिरता की चुनौती भी बड़ी थी। स्वतंत्रता के समय देश विभाजन, हिंसा, तथा क्षेत्रीय संघर्षों की आग में जल रहा था, जिससे स्थिर सरकारों का अभाव बना रहा। कई क्षेत्रों में आपसी प्रतिस्पर्धा और सांप्रदायिक तनाव लोकतांत्रिक ढांचे के स्थायित्व के लिए बाधक सिद्ध हुए। राज्यों का परिसंवाद प्रक्रिया भी जटिलता से भरा था। निजता के अधिकार, क्षेत्रीय स्वायत्तता और केंद्रीय सरकार के बीच संतुलन बनाना आवश्यक था, जिसे धीरे–धीरे विकसित किया गया।

कानूनी व्यवस्था का विकास भी एक बड़ी चुनौती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् नए कानून बनाना, अंतरराष्ट्रीय अनुबंधों का निष्पादन, और व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक था। इसके साथ ही, न्यायिक प्रणाली को स्वतंत्र, पारदर्शी और समयबद्ध बनाने का कार्य भी कठीन था, ताकि जनता का विश्वास बना रहे। इसके अलावा, प्रशासनिक क्षमता और कार्यकुशलता के अभाव में कई व्यवस्थाएँ ठीक से कार्य नहीं कर पाई। इन सभी चुनौतियों ने भारत के शासन–व्यवस्था के स्थायित्व और प्रभावशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।

इस तरह, संस्थागत निर्माण और शासन व्यवस्था की चुनौतियाँ न केवल भारत के राजनीतिक प्रणाली के विकास में बाधाएँ थीं, बल्कि इसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिरता के लिए भी एक दीर्घकालिक प्रयास की मांग थीं। इन चुनौतियों का समाधान खोजने के लिए निरंतर सुधार, जागरूकता, और बेहतर नेतृत्व की आवश्यकता थी, ताकि एक मजबूत और टिकाऊ लोकतांत्रिक प्रणाली का निर्माण हो सके।

5.1. संविधान निर्माण और औपचारिक संस्थाओं का विकास

संविधान निर्माण की प्रक्रिया में भारत ने सांविधानिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था के आधारशिला के रूप में नए ढांचे का विकास किया। स्वतंत्रता के समय देश विभाजन की विभीषिका एवं विविधता की जटिलता के चलते संविधान निर्माण में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। संविधान सभा ने इस प्रक्रिया में विभिन्न क्षेत्रों, जातियों, जातियों एवं भाषाई समूहों के प्रतिनिधियों के विचारों को समन्वित किया। स्वतंत्रता के तुरंत बाद, विविध विषयों पर गंभीर विमर्श और बहसें हुईं, जिससे संविधान का प्रारूप तैयार हुआ। इस प्रक्रिया के दौरान लोकतांत्रिक मूल्यों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय और संविधान की स्थिरता को सुनिश्चित करने हेतु व्यापक प्रयास किए गए।संविधान के निर्माण में विश्व के अनुभवों का अध्ययन एवं भारतीय पारंपरिक एवं आधुनिक सिद्धांतों का मेल किया गया। उंगलियों पर गिने–चुने राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय संस्थानों का निर्माण हुआ। विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा अनुशासनात्मक संस्थान स्थापित किए गए, जिनका उद्देश्य स्वतंत्रता के बाद शासन की सुचारू व्यवस्था स्थापित करना था। इस दौरान संविधान के प्रति सामान्य जनता में जागरूकता और विश्वास स्थापित करने की आवश्यकता भी उभरी, जिसने संस्थागत प्रक्रिया को सहज और स्थायी बनाने में सहायक भूमिका निभाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संस्थानों का निर्माण भारतीय समाज की जटिलताओं एवं ऐतिहासिक विशेषताओं के अनुरूप होना आवश्यक था। इसलिए प्रारंभिक वर्षों में ही ज्ञात हुआ कि संस्थानों का निर्माण क्रियान्वयन के समय लचीलापन एवं सुधार की गुंजाइश सहित होना चाहिए। भारतीय राजनीति में विविधता, भाषाई एवं सांस्कृतिक विरासत को संतुलित करने की चुनौती ने इस प्रक्रिया को और भी जटिल बना दिया। परिणामस्वरूप, संविधान और संस्थाधार का विकास एक सतत प्रक्रिया रही,जिसमें समय–समय पर संशोधन एवं सुधार होते रहे।

इस क्रम में यह भी ध्यान रखना पड़ा कि व्यवस्था में स्थिरता और सुधार के बीच संतुलन बना रहे। इसलिए संविधान में संशोधन प्रक्रिया को सरल बनाने तथा नई संस्थाओं का समावेश सुनिश्चित किया गया। समग्र रूप

से, संविधान निर्माण एवं संस्थागत विकास का पूरा प्रयास इस मानवीय विविधता एवं सांस्कृतिक परंपराओं के बीच, समन्वय व स्थिरता की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ। यह प्रक्रिया भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण राष्ट्र के निर्माण में दिशा–निर्देश एवं आधारशिला साबित हुई।

5.2. राजनीतिक स्थिरता और राज्यों का परिसंवाद

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान ने एक शांतिपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त किया, किन्तु मौजूदा राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने में अनेक चुनौतियाँ सामने आईं। देश के विविधता समृद्ध समाज में विभिन्न राज्यों के बीच असमानताओं, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयामों ने राज्यों के बीच संबंधों को जटिल बना दिया। इन विविधताओं को समावेशी एवं सुसंगठित रूप में जोड़ने के लिए परस्पर संवाद और समन्वय आवश्यक था, जो प्रारंभिक वर्षों में विषम परिस्थितियों में सीमित था। विभिन्न राजनीतिक दलों, सामाजिक समूहों और क्षेत्रीय हितों के मध्य मतभेदों ने स्थिरता स्थापित करने की प्रक्रिया को प्रभावित किया।

राज्य स्तर पर संवाद का अभाव और केंद्र सरकार के निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधिकृतता का संकट भी सामने आया। अनेक अवसरों पर बोलचाल की कमी और पारदर्शिता के अभाव ने विश्वास की कमी पैदा की। यह चुनौती विशेष रूप से उस समय विशेष थी जब देश को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाना था। स्थिरता और समावेशन की दिशा में बेहतर संवाद स्थापित करना आवश्यक था, ताकि विभिन्न हितधारक अपने मतभेदों को सुलझाकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत कर सकें।

इसके साथ ही, प्रदेशों में राजनीतिक नेतृत्व का स्थायित्व भी एक आवश्यक कारक बन गया। अधिकांश सरकारें अल्पकालिक सरकारें बनते–गिरते रहे, जिससे दीर्घकालिक योजनाएँ और विकास संबंधी परियोजनाएँ प्रभावित हुईं। राजनीतिक स्थिरता के बिना नीतिगत स्थिरता बहाल करना कठिन हो जाता है, जो राष्ट्र के समग्र विकास के मार्ग में बाधक सिद्ध हुआ। सामुदायिक और क्षेत्रीय हितों के बीच संवाद का अभाव लोकनीति के विभिन्न आयामों में द्वंद्व पैदा करने लगा। यह अवस्था जटिलताओं को जन्म देने के साथ–साथ विभिन्न क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान में भी बाधा बनी। अतः, राजनीतिक स्थिरता एवं राज्यों का पारस्परिक संवाद न केवल राजनैतिक परिपाटी का आवश्यक अंग है, बल्कि टिकाऊ विकास और राष्ट्रीय एकता के लिए अनिवार्य आवश्यकता है। इन चुनौतियों का सामना प्रभावी संवाद, स्थिरता और समावेशी राजनीति के माध्यम से ही किया जा सकता है।

5.3. कानूनी–नियमन और व्यक्तिगत अधिकार

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राष्ट्र–निर्माण में कानूनी–नियमन और व्यक्तिगत अधिकारों का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ ही भारत को एक नए संविधान की स्थापना करनी पड़ी, जिसने देश के नागरिकों के मूल अधिकारों और स्वतंत्रताओं प्रदान की। संविधान ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, धार्मिक स्वतंत्रता, और न्यायपालिका जैसी अधिकारों का संरचना की, जिसे विधायी, कार्यकारी और न्यायपालिका तीनों शाखाओं में सुनिश्चित किया गया। इन अधिकारों का संरक्षण किसी भी स्वतंत्र और समावेशी लोकतंत्र का आधार है।

कानूनी नियमन यानि कि विधि–व्यवस्था का विकास एवं सुदृढ़ीकरण वह प्रक्रिया है, जिससे नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकार सुरक्षित रहते हैं। इस संदर्भ में भारतीय सुप्रीम कोर्ट का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। अदालतों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विस्तार करते हुए उन कानूनों को निरस्त किया जो अधिकारों का उल्लंघन करते थे। उदाहरण के रूप में, अनुच्छेद 19 के अंतर्गत स्वतंत्रता का अधिकार और अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण इसे स्पष्ट करता है। इन प्रावधानों ने समदर्शी, संरक्षित और मानवीय अधिकारों का कानूनी आधार प्रदान किया। हालाँकि, व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा एवं कानूनी व्यवस्था का विकास एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें समय–समय पर नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। विशेष रूप से, आपातकालीन स्थिति में अधिकारों का संभवतः दुर्बल होना और सामाजिक असमानताओं के चलते अधिकारों का व्यावहारिक संरक्षण चुनौती बनते गए हैं। सामाजिक–आर्थिक बाधाओं, राजनीतिक हस्तक्षेप और कानूनी अनियमितताओं ने इन अधिकारों के कार्यान्वयन को प्रभावित किया। अतः, अधिकारों का संरक्षण एक सतत संवेदनशील प्रक्रिया है, जिसमें कानूनी सुधार और जागरूकता दोनों आवश्यक हैं।

सरकार एवं न्यायपालिका ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा में अनेक कदम उठाए हैं, जिनमें कानून में संशोधन,

नई नीतियों का निर्माण और अधिकारों के प्रति जागरूकता कार्यक्रम शामिल हैं। इन प्रयासों से न केवल संविधानिक संरक्षण मजबूत हुआ, बल्कि नागरिकों का विश्वास भी जागरूकता के भरथ बढ़ा। इस प्रक्रिया में, कानून का लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता और न्यायिक निर्णयों में निरंतरता भारत के संविधानिक मूल्यों की स्थिरता सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। इस तरह, कानूनी–नियमन एवं व्यक्तिगत अधिकार का संरक्षण, देश के समावेशी और न्यायसंगत राष्ट्र–निर्माण का अभिन्न अंग है।

6. आर्थिक विकास से संबद्ध बाधाएं

आर्थिक विकास में बाधाएँ कई स्तरों पर व्याप्त हैं, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के समग्र आर्थिक प्रगति को प्रभावित किया है। प्रमुख चुनौतियों में औद्योगीकरण की धीमी गति और कृषिगत संरचना का जटिल जीवनशैली से जुड़ा होना शामिल है। स्वतंत्रता के बाद भारत में उद्योगों का उन्नयन अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो पाया, क्योंकि मूलभूत अवसंरचनात्मक सुविधाएं विकसित करने और आवश्यक पूंजी की व्यवस्था में समस्याएं रहीं। उद्योगों का सीमित विस्तार और अपेक्षित तकनीकी उन्नयन अक्सर संरचनात्मक बाधाओं के कारण रुका रहा। खेती की नीति भी एक बाधा रही, क्योंकि कृषिगत क्षेत्र पारंपरिक और छोटे स्तर पर आधारित रहा, जिससे कृषि उत्पादकता में अपेक्षित बढ़ोतरी नहीं हो सकी। छोटे किसान और असमान भूमि वितरण ने कृषि के विकास में बाधा डाली, जिससे ग्रामीण विकास भी प्रभावित रहा। वित्तीय प्रणाली का कमजोर ढांचा और उद्दीपनों का अभाव भी निवेश और आर्थिक गतिविधियों को सीमित कर रहा था। बैंकिंग प्रणाली और पूंजी बाजार के अभाव ने निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में पूंजी प्रवाह को प्रभावित किया। इस स्थिति ने रोजगार के अवसर भी कम किए, जिससे गरीबी और असमानता बढ़ी। साथ ही, वित्तीय संसाधनों का केन्द्रित होना और असमान वितरण समाज में विषमता को और गहरा बनाता रहा। समावेशन की दिशा में प्रयासों के बावजूद, सामाजिक और आर्थिक असमानताएं पिछड़ेपन का कारण बनीं। अंततः, इन बाधाओं के कारण भारत का आर्थिक पुनीत अभी भी सक्षम रूप से अपेक्षित गति नहीं पकड़ पाया, जिससे व्यापक स्तर पर महसूस की गई अनावश्यक रुकावटें उत्पन्न हुईं।

6.1. औद्योगीकरण और कृषिगत संरचना

स्वतंत्रता के बाद भारत की आर्थिक संरचना मुख्य रूप से कृषिशील रही, जो देश की अर्थव्यवस्था का आधार थी। परन्तु, समय के साथ हुई तेजी से जनसंख्या वृद्धि, पारंपरिक कृषि पद्धतियों और संसाधनों पर बढ़ते दबाव ने कृषिगत संरचना को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सबसे महत्वपूर्ण समस्या भूमि का आबंटन एवं उपयोग का असमान ढांचा रहा, जिसमें बहुत बड़ी संख्या में किसानों के पास पर्याप्त भूमि नहीं थी, और भूमि का छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजन होने से एकीकृत कृषि प्रणाली विकसित नहीं हो पाई। इसके अतिरिक्त, कृषि उत्पादकता में लगातार कमी और तकनीकी का अभाव कृषि क्षेत्र की दक्षता को प्रभावित करता रहा, जिससे किसानों की आय में स्थिरता नहीं आई। गांवों में अवसंरचना की कमी और सिंचाई सुविधाओं का अभाव भी इन समस्याओं को बढ़ावा देता रहा। इस संदर्भ में, औद्योगीकरण की धीमी प्रगति ने कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था को विविधता प्रदान करने में टकराव किया, जिससे रोजगार के अवसर भी सीमित रहे। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में प्रगति न होने का एक कारण संसाधनों का उचित आवंटन न होना था, साथ ही जरूरी पूंजी और तकनीकी का अभाव भी था। परिणामस्वरूप, भारतीय कृषि और औद्योगिक संरचना में दूरी बनी रही, जिससे आर्थिक प्रगति अवरुद्ध हुई। साथ ही, सामाजिक विभाजन, भूमि संबंधी विवाद और किसान आंदोलन जैसे तत्व भी इन चुनौतियों को जटिल बनाते गए, जो देश के राष्ट्र–निर्माण के उद्देश्यों में बाधाएँ उत्पन्न कर रहे थे। अतः, आर्थिक सुधारों और निरंतर विकास की दिशा में कदम उठाने के साथ–साथ, कृषिगत संरचनाओं का आधारभूत आधुनिकीकरण आवश्यक था, ताकि देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिरता सुनिश्चित की जा सके।

6.2. वित्तीय व्यवस्था और उद्दीपन

स्वतंत्रता के बाद भारतीय वित्तीय व्यवस्था में अनेक समसामयिक एवं दीर्घकालिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। प्रारंभिक अवस्थाओं में वित्तीय संसाधनों का अभाव और आर्थिक आधार का कमजोर होना मुख्य अवरोध थे। स्वतंत्रता के तत्कालीन काल में देश की आर्थिक संरचना पर अंग्रेजों के समय से चली आ रही आर्थिक असमानताओं का प्रभाव था, जिसके कारण विकास के लिए आवश्यक वित्तीय उपकरण एवं साधनों की कमी पाई जाती थी। इस परिस्थिति का सामना करने हेतु, सरकार ने वित्तीय संस्थानों की स्थापना और प्रणालीगत सुधारों की दिशा में कदम उठाए। बैंकिंग प्रणाली का सृजन एक आधारभूत कदम था, जिससे सरकारी वित्तपोषण, विकास परियोजनाओं और औद्योगिक विस्तार के लिए पूंजी सुलभ हुई। इसके अंतर्गत भारतीय राष्ट्रीय बैंक जैसे

संस्थानों का गठन हुआ, जिन्होंने मुद्रा प्रचलन एवं वित्तीय नीतियों का संचालन किया। इसके साथ ही, कराधान प्रणाली का आधुनिकीकरण और राजस्व संग्रह की दक्षता में सुधार हुआ। इन प्रयत्नों से वित्तीय संसाधनों का संग्रह, प्रबंधन और वितरण बेहतर हुआ, परंतु अभी भी देश के विकास के आवश्यक उद्दीपन वित्तीय संसाधनों का पर्याप्त प्रवाह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण था।

वित्तीय व्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए, सरकार को उच्च स्तर की राष्ट्रीय योजना एवं आर्थिक नीति का निर्माण करना पड़ा। इससे न केवल वित्तीय संसाधनों का सुगम प्रवाह सुनिश्चित हुआ, बल्कि आर्थिक स्थिरता और विकास के लिए आवश्यक उद्दीपनों का सृजन भी हुआ। वित्तीय संस्थाओं का मजबूत आधार बनाना, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण, और कर नीतियों का न्यायसंगत क्रियान्वयन, आर्थिक विकास का आधार बने। ये उपाय वित्तीय आवंटन को दक्षता से संचालित करने और निजी व सार्वजनिक निवेश को सुगम बनाने में सहायक सिद्ध हुए। वित्तीय उद्दीपन की दृष्टि से, पूंजी का प्रवाह, सरकारी खर्चे, और रोजगार सृजन पर विशेष ध्यान दिया गया। आर्थिक माहौल को ऐसा बनाने का प्रयास किया गया कि उत्पादन के विविध क्षेत्रों को पूंजी एवं संसाधनों की अधिकतम उपलब्धता हो, जिससे आर्थिक गतिविधियों में तेजी आए। इस तरह की नीतियाँ और संस्थान भारतीय राष्ट्र–निर्माण में वित्तीय स्थिरता और उद्दीपन के महत्वपूर्ण स्तम्भ साबित हुए। उपलब्ध संसाधनों का समुचित प्रबंधन और उद्दीपनों का सशक्तिकरण, आर्थिक विकास के मुख्य आधार बनते हुए, भारतीय समाज के समग्र उत्थान हेतु आवश्यक थे।

6.3. समावेशन बनाम असमानता

समावेशन बनाम असमानता की चुनौतियाँ स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में गहरी जटिलता के साथ उभरीं। स्वतंत्रता के पश्याचात देश में सामाजिक, आर्थिक और जाति–आधारित विभाजन बहुलता का प्रतीक बन गए, जिनके परिणामस्वरूप विभिन्न स्तरों पर असमानता के कुएं खोदे गए। पढ़े–लिखे और शहर–केन्द्रित समाजिक वर्गों का नेतृत्व अधिकृत रहा, जिससे ग्रामीण और पिछड़े वर्गों को लाभ दिलाने वाली नीतियों की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रक्रिया में, पृष्ठभूमि और अवसरों में व्यापक अंतर ने समाज में स्थायी भेदभाव का माहौल तैयार किया, जो समय के साथ विभाजन और विघटन का कारण बना।

सामाजिक समावेशन का उद्देश्य समृद्ध समाज की स्थापना था, किंतु व्यावहारिक चुनौतियों ने इसे कठिन बना दिया। अंग्रेज़ी शिक्षा, आर्थिक अवसरों की असमान उपलब्धता और जाति–आधारित भेदभाव के कारण समाज में बाधाएँ बनी रहीं। अनेक समुदायों को मुख्यधारा से बाहर रखने, उनकी प्रतिभाओं का आच्छादन और सांस्कृतिक असम्मेलन ने उनकी सामंजस्यपूर्ण भागीदारी को प्रभावित किया। समानता और अवसर की मौलिक मान्यताओं के बावजूद, सामाजिक संरचनाएँ और परंपराएँ अक्सर समावेशन की प्रक्रिया में अवरोध बनकर खड़ी रहीं।

असमानता की ये धाराएँ न केवल सामाजिक स्तर पर अपितु आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक जीवन में भी स्पष्ट थीं। गरीबी और अशिक्षा के कारण अनेक समूह अविकसित रह गए, जिससे सामाजिक गतिशीलता बाधित हुई। शिक्षा और संसाधनों का अभाव, दलित व पिछड़े वर्गों के साथ ही महिलाओं और अल्पसंख्यकों के लिए भी विकास के अवसरों को सीमित कर गया। विभिन्न समुदायों के बीच आर्थिक निधियों का असमान वितरण और अवसरों की विषमताएँ ने समावेशन के प्रयासों को कठिन बनाया।

उपरोक्त चुनौतियों का सामना करने के लिए नीतियों का निर्माण, सामाजिक जागरूकता और संरक्षण की संस्थाएँ विकसित की गईं। इसके बावजूद, समाज में विषमता का आकार धीरे–धीरे कम करने के प्रयास आवश्यक रहे। समावेशन के प्रयासों का मुख्य उद्देश्य सभी समुदायों को समान अधिकार, अवसर और भागीदारी का अनुभव कराना था, किंतु वास्तविकता में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जटिलताओं ने उस दिशा में प्रगति को धीमा कर दिया। अतः, स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में समावेशन और असमानता के बीच संतुलन स्थापित करना एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया थी, जिसमें सामाजिक एवं सरकारी प्रयासों दोनों का योगदान रहा।

7. समाज–शास्त्रीय आयाम और विविधता–सम्बन्धी चुनौतियाँ

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में दिखाई देने वाली विविधताओं को सम्मानजनक रूप से सहेजते हुए मजबूत और समावेशी समाज का निर्माण करना एक महत्वपूर्ण सामाजिक चुनौती रही है। देश की संप्रभुता एवं एकता बनाए रखने के लिए विभिन्न धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय समुदायों के बीच आपसी समरसता और सौहार्द

आवश्यक है। इन विविधताओं का स्थायी आधार पर सम्मान एवं समानता के साथ विकास करना आवश्यक है ताकि सामाजिक विभाजन और असमानता न फैले। धार्मिक विविधता का प्रभाव सामाजिक समरसता पर गहरा पड़ता है। भारतीय समाज में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई एवं अन्य धर्मों का प्रभाव विविध सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों के बावजूद स्थायी है। इन विविध धार्मिक समुदायों के बीच स्थिरता और सहिष्णुता सुनिश्चित करना सामाजिक समरसता का अनिवार्य अंग है। इसी प्रकार, भाषाई मतभेद पूर्व में सामाजिक विघटन का कारण बने हैं, और इनको संतुलित रूप से समाहित करने के लिए समर्पित नीतियों एवं समावेशी शिक्षा व्यवस्था आवश्यक है। क्षेत्रीय विविधताएँ जैसे कि विघभिन्न–भिन्न प्रदेशीय परंपराएँ, संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ भी कभी–कभी क्षेत्रीय आंदोलनों को जन्म देती हैं, जिनका उपयुक्त समाधान आवश्यक है।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महिला एवं जाति–वर्ग के संघर्ष एवं आंदोलन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महिलाओं का सामजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में समान स्थान सुनिश्चित करना, उनके अधिकारों की रक्षा करना और लैंगिक समानता स्थापित करना जागरूकता एवं समर्पित प्रयासों की मांग करता है। वहीं, जाति व्यवस्था एवं वंशवाद के कारण सामाजिक असमानता भेदभाव एवं शोषण बढ़ता है, जिसे समाज–शास्त्रीय दृष्टिकोण से समझकर उचित सुधारात्मक कदम उठाना समीचीन है।

मानव पूंजी के विकास के लिए साक्षरता और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सुदृढ़ आधार बनाना आवश्यक है। भारत में शिक्षा का प्रसार, मानव संसाधन का विकास और मानसिकता में परिवर्तन आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की कुंजी हैं। इसके साथ ही, विविध मानसिकताओं एवं जीवनशैली का सम्मान एवं समावेशन सामाजिक स्थिरता एवं सामंजस्य स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार, समाज–शास्त्रीय आयाम की चुनौतियों का सामना करते हुए देश में समावेशन, समानता एवं धार्मिक एवं भाषाई विविधताओं का सम्मान अतिआवश्यक है ताकि एक स्थिर, सक्षम और समरस राष्ट्र का निर्माण हो सके।

7.1. धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधता के निक्षेप

स्वतंत्रता के बाद भारत की सामाजिक व्यवस्था में मौजूद धार्मिक, भाषाई एवं क्षेत्रीय विविधता ने राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया को अनेक जटिलताओं से परिचित कराया। भारत अनेक धार्मिक समुदायों, भाषाई समूहों और क्षेत्रीय संस्कृतियों का मेल है, जिनके परस्पर सहयोग और समावेशन के प्रयास आवश्यक हैं। धार्मिक विविधता में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध आदि विभिन्न सम्प्रदायों का व्यापक उल्लेखनीय है, जिसके कारण सामाजिक सद्भाव और संरचनात्मक समरूपता का मार्ग अत्यंत कठिन हो गया। सांप्रदायिक निष्ठा एवं असमानता के प्रयासों के बीच समावेशन एवं सह–अस्तित्व के सिद्धांत की स्थापना असाधारण चुनौती बन गई है।

वहीं, भाषायी विविधता भारत की पहचान का अभिन्न हिस्सा है; यहाँ सैंकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनके बीच संचार और शिक्षा के क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं का अस्तित्व अलग–अलग सांस्कृतिक पहचान और परंपराओं का संरक्षण करता है, परंतु यह भी सरकार एवं समाज के समेकित कार्यकलाप में बाधाएं उत्पन्न करता है। राष्ट्रीय एकता और विकास के लिए आवश्यक है कि इन भाषाई समूहों को समान रूप से प्रोत्साहन एवं समर्थन दिया जाए, ताकि भाषा के आधार पर विभाजन न हो।

आंचलिक एवं क्षेत्रीय विविधताओं ने भी साझा लक्ष्य की प्राप्ति में अनेक बाधाएँ उत्पन्न की हैं। भारत के विविध भूगोल एवं परंपराएं विविध आवश्यकताओं और समस्याओं को जन्म देती हैं। इन विभिन्नताओं का समावेश करना, संसाधनों का समान वितरण और क्षेत्रीय हितों का संतुलन सुनिश्चित करना एक रणनीतिक चुनौती है। अनेक मामलों में खास स्थानीय आवश्यकताओं और सांस्कृतिक परंपराओं को ध्यान में रखते हुए नीतियों का निर्माण करना आवश्यक है, जिससे सभी वर्गों एवं क्षेत्रों का विकास सुनिश्चित हो सके।

7.2. महिलाएं, जाति–वर्ग, और सामाजिक परिवर्तन

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में महिलाएं, जाति–वर्ग और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया विशेष महत्त्व रखती है। विदेशी औपनिवेशिक नीति के प्रभावों से उपजी सामाजिक विषमताएँ और पूर्व स्थापित जाति–पांति प्रणालियाँ स्वतंत्रता के बाद भी समाज में गहरी जड़ें जमा सकीं। महिलाओं के संदर्भ में, पारंपरिक रूढ़ियों, विधियों और धार्मिक संस्थानों ने उनकी सामाजिक भागीदारी में बाधाएँ खड़ी कीं। स्वतंत्रता के पश्चात् भी महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया धीमी रही, क्योंकि सामाजिक मान्यताएँ एवं परंपराएँ बदलाव के विरुद्ध थीं।

कई क्षेत्रों में महिला शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक स्वतंत्रता का अभाव रहा, जिससे सामाजिक परिवर्तन की गति बाधित हुई।

वहीं, जाति–वर्ग व्यवस्था ने सामाजिक असमानताओं को संरक्षित किया। ऊंची जातियों की प्रभावशाली स्थिति और निम्न जातियों का शोषण जारी रहा। जबकि संविधान ने सभी जातियों एवं वर्गों को समान अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया, परंतु व्यवहारिक स्तर पर पूर्वग्रह और सामाजिक रूढ़ियाँ उनकी पूर्ण भूमिका में आने में बाधक रहीं। शोषित जातियों एवं वंचित वर्गों को सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए संघर्ष करना पड़ा। आशारूप परिवर्तन के बावजूद, सामाजिक भेदभाव और वर्गीय विभाजन आज भी समाज में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के दौरान महिलाओं, जाति एवं वर्ग का अनुभव और संघर्ष स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज की विभिन्न चुनौतियों का द्योतक हैं। इन वर्गों के संदर्भ में किए गए प्रयासों के बावजूद, सामाजिक गतिशीलता और समावेशन की प्रक्रिया अभी भी धीमी है। आज भी सामाजिक समरसता, समान अधिकार और समान अवसर सुनिश्चित करने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं। इन सामाजिक परिवर्तन प्रक्रियाओं का प्रभाव न केवल समाज की संरचना को प्रभावित करता है, बल्कि राष्ट्र की दिशा और विकास की गति को भी निर्धारित करता है।

8. सुरक्षा, आंतरिक शांति और बाह्य संबंध

स्वतंत्रता के पश्चात भारत को आंतरिक सुरक्षा सुनिश्चित करने, शांति बनाए रखने और बाह्य संबंधों को मजबूत करने की तत्काल आवश्यकता थी। आंतरिक सुरक्षा का आधार स्थिर न्याय व्यवस्था, अपराध नियंत्रण और सामजिक सौहार्द पर निर्भर करता है। स्वतंत्रता के बाद देश में हुई विविधता और सामाजिक विभाजन ने सुरक्षा चुनौतियों को बढ़ाया, जिन्हें नियंत्रित करना अत्यंत आवश्यक था। विभिन्न अधिनियमों, पुलिस सुधारों और राष्ट्रीय सुरक्षा बलों के गठन से इन समस्याओं से निपटा गया। इसके अतिरिक्त, नक्सलवादी आंदोलन, अलगाववादी विचारधाराएँ और धार्मिक सहिष्णुता का अभाव देश की आंतरिक शांति के लिए खतरा बनकर उभरे। इनके समाधान के लिए समग्र रणनीतियों और समर्पित संसाधनों का निवेश आवश्यक था।

बाह्य संबंधों में भारत का स्थिर और स्वच्छ छवि बनाना, पड़ोसी देशों के साथ शांतिपूर्ण संवाद कायम करना, तथा वैश्विक मंच पर अपनी स्थिति मजबूत करना प्रमुख प्रयास रहे। इसमें प्रमुख आर्थिक, राजनीतिक और सैन्य रणनीतियों का समावेश था। पड़ोसी राज्यों के साथ सीमा विवादों का शांतिपूर्ण समाधान खोजने और क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने के प्रयास भी आवश्यक थे। इस क्रम में भारत को अपनी सुरक्षा हितों के साथ–साथ कूटनीतिक संबंधों में सतत संतुलन बनाए रखना पड़ा। चीन, पाकिस्तान जैसे देशों के साथ सीमा पर तनाव और इनके समाधान के लिए युद्ध और शक्ति–नेकताएँ कायम करने पड़े।

अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत ने अपने राष्ट्रीय हितों का समुचित प्रतिनिधित्व किया, विश्व शांति एवं सहयोग के सिद्धांतों का समर्थन किया। पर्यावरण संरक्षण, आतंकवाद का मुकाबला, और जलवायु परिवर्तन जैसी वैश्विक चुनौतियों के प्रति भारतीय नीति का समन्वय उल्लेखनीय रहा। राष्ट्रीय सुरक्षा के समुचित ढाँचे के विकास के साथ–साथ, बाह्य संबंधों में स्थिरता लाने के लिए आर्थिक और कूटनीतिक रणनीतियों का समावेश आवश्यक था। इन प्रक्रियाओं ने भारत को न केवल क्षेत्रीय बल्कि वैश्विक विवादों में अपनी भूमिका निभाने के योग्य भी बनाया। इस प्रकार, सुरक्षा, आंतरिक शांति और बाह्य संबंधों के क्षेत्रों में निरंतर सुधार और समर्पित प्रयास ही भारत के सुगठित राष्ट्र–निर्माण के आधारभूत स्तंभ हैं।

8.1. आंतरिक सुरक्षा चुनौतियाँ

आंतरिक सुरक्षा चुनौतियाँ स्वतंत्रता के पश्चात भारत का एक सबसे महत्वपूर्ण और जटिल विषय रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात देश में अनेक विविधतापूर्ण और जटिल आंतरिक विवाद एवं खतरे उपस्थित हुए हैं, जिनका निराकरण स्थायित्व और एकता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक रहा है। इन चुनौतियों में सबसे पहले तो क्षेत्रीय और जातीय विविधताओं का मुद्दा है, जो कभी–कभी सामाजिक विभाजन और विद्रोह की प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं। विभिन्न जातियों, भाषाई समूहों और क्षेत्रीय समुदायों के बीच असमानता और मतभेद राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बन सकते हैं, यदि उनका सही ढंग से समाधान प्रस्तुत न किया जाए।

स्वतंत्रता के बाद कई वर्षों तक नक्सली आंदोलन एवं उग्रवादी गतिविधियों ने देश के कई हिस्सों में हिंसा

और अस्थिरता का माहौल बनाया। इन आंदोलनों का मुख्य कारण वहाँ के स्वतंत्रता संग्राम या सामाजिक–आर्थिक असमानताओं के साथ जुड़ी प्रवृत्तियाँ भी थीं। इन आंदोलनों ने क्षेत्रीय सुरक्षा और स्थिरता को प्रभावित किया, जिससे राष्ट्र को अपनी आंतरिक सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना पड़ा। इसके अतिरिक्त, धार्मिक कट्टरवाद और सांप्रदायिक तनाव भी देश के विभिन्न भागों में गहरी उलझनों का कारण बनते रहे। धार्मिक एवं जातीय विवादों ने कभी–कभी आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डाला, जिससे साम्प्रदायिक हिंसा और उपद्रव जैसे हालात उत्पन्न हुए।

आंतरिक सुरक्षा की इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सशस्त्र बलों, खुफिया एजेंसियों एवं कानून व्यवस्था के तंत्र को मजबूत करना पड़ा। आधुनिकपउम तकनीकों का प्रयोग कर जागरूकता, निगरानी और त्वरित कार्रवाई का सिस्टम विकसित किया गया। साथ ही, समुदाय आधारित एकीकृत प्रयासों, सांस्कृतिक समागम और सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से सामाजिक सौहार्द्र और भाईचारे को सहज बनाने का प्रयास किया गया। परंतु, इन चुनौतियों का निरंतर विश्लेषण एवं समुचित समाधान ही देश में स्थिरता और सामाजिक समरसता सुनिश्चित कर सकता है। अतः, आंतरिक सुरक्षा का विषय न केवल सैनिक शक्ति से बल्कि सामाजिक समरसता, समानता और न्याय के प्रति प्रतिबद्धता से भी जुड़ा हुआ है, जो राष्ट्र के समग्र विकास और स्थिरता की आधारशिला है।

8.2. पड़ोस और विदेश–नीति के संतुलन

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत ने अपनी विदेश–नीति में पड़ोसी देशों और प्रमुख वैश्विक शक्तियों के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। समकालीन भू–राजनीतिक समीकरणों में भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश–नीति अपनाते हुए अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के साथ–साथ क्षेत्रीय स्थिरता और शांति सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा। इसमें पड़ोसी देशों से संबंध सुधारने और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अपने हितों का संरक्षण करना विशेष महत्व रहा। भारत ने सीमाओं की रक्षा, सांस्कृतिक संबंधों एवं आर्थिक सहयोग के माध्यम से अपने सामरिक और आर्थिक हितों का समन्वय किया।

दृष्टिकोण में निहित प्राथमिकता थी कि पड़ोसी देशों के साथ सामंजस्य स्थापित कर क्षेत्रीय स्थिरता को सुनिश्चित किया जाए, परंतु संधि और मेल–मिलाप के प्रयासों के साथ ही स्थिरता और सुरक्षा के स्थायी उपाय भी अपनाने पड़े। पाकिस्तान के साथ कश्मीर मुद्दा, चीन के साथ सीमा विवाद, और नेपाल–भूटान जैसे देशों के साथ सीमाजन्य एवं संसाधनों को लेकर तनावपूर्ण व्यवहार का सामना करना पड़ा। इन चुनौतियों ने भारत की विदेश नीति को संतुलित आचरण का पाठ पढ़ाया।

इस प्रक्रिया में भारत ने न केवल अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी, बल्कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अपनी उपस्थिति और प्रभाव को मजबूत बनाने के प्रयास किए। सार्क, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन, और संयुक्त राष्ट्र जैसे मंचों के माध्यम से भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ संवाद स्थापित किया। इसके साथ ही, आर्थिक सहयोग और आपसी रणनीति बनाने पर भी बल दिया गया।

सामरिक एवं आर्थिक हितों के समन्वय में भारत ने स्वावलंबन की दिशा में कदम बढ़ाए, ताकि क्षेत्रीय स्थिरता के साथ घरेलू विकास भी सुनिश्चित हो सके। परंतु, पड़ोस में राजनीतिक अस्थिरता, सीमा से जुड़ी चुनौतियां और सांस्कृतिक विविधताएं इस संतुलन को बनाए रखना कठिन बना देती हैं। इन पहचानों के बीच संवाद और द्विपक्षीय संबंध मजबूत करने के प्रयास समय–समय पर प्रभावित हुए हैं।

8.3. क्षेत्रीय अस्थिरता और लोकतांत्रिक स्थिरता

क्षेत्रीय अस्थिरता और लोकतांत्रिक स्थिरता के बीच जटिल संबंध विकसित हुए हैं, जो राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत की विशाल और विविधतापूर्ण भौगोलिक स्थिति ने क्षेत्रीय विभाजन और संघर्ष जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। विभिन्न राज्यों के बीच संसदीय, आर्थिक, और सांस्कृतिक दिशाओं में भिन्नता के कारण कभी–कभी टकराव और असमंजस की स्थिति उत्पन्न होती है, जिससे राजनीतिक स्थिरता प्रभावित हो जाती है। इन अवस्थाओं में, स्वायत्तता और नियंत्रण की मांग के वर्चस्व, क्षेत्रीय असमानताओं, और केंद्र–राज्य संबंधों में तनाव की भी बढ़ोतरी होती है।

इसके अतिरिक्त, सीमा विवाद और क्षेत्रीय तनाव जैसे मुद्दे राष्ट्रिय सुरक्षा को चुनौती बनाते हैं, जो लोकतंत्र की गुणवत्ता और स्थिरता को खतरें में डालते हैं। अंतरराष्ट्रीय दबाव और पड़ोसी देशों के साथ विभिन्न मुद्दे, जैसे

सीमाओं का विवाद या सैनिक गतिविधियां, सुरक्षा के साथ–साथ राजनीतिक स्थिरता पर भी प्रभाव डालते हैं। समाज में विभिन्न समुदायों के बीच बाधाएं और क्षेत्रीय असमानताएं अक्सर सामाजिक विभाजन को जन्म देती हैं, जो लोकतांत्रिक तंत्र को कमजोर कर सकती हैं। क्षेत्रीय अस्थिरता का रोकथाम एवं समाधान आवश्यक है ताकि लोकतंत्र को स्वस्थ और मजबूत बनाया जा सके। इसके लिए संवाद, समावेशन, और संवैधानिक संस्थाओं की मजबूती आवश्यक है। स्थिरता के बिना राष्ट्र–निर्माण अधूरा है और अतः इन चुनौतियों का समाधान निरंतर प्रयास और समर्पित नेतृत्व की जिम्मेदारी बनती है। तभी ही दीर्घकालिक लोकतंत्र और समावेशक विकास सुनिश्चित हो पाएगा।

9. निष्कर्ष

स्वतंत्र भारत के राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए विकसित हुई है। इनमें मुख्य रूप से राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समरसता, सामाजिक समावेशिता एवं विदेशी संबंधों के प्रबंधन जैसी बुनियादी समस्याएं हैं। इन चुनौतियों का समुचित समाधान खोजने के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक रहे हैं, जिनमें नीतिगत सुधार, संस्थागत सुदृढ़ीकरण और सामाजिक जागरूकता का बढ़ावा शामिल है। राजनीतिक निरंतरता और लोकतांत्रिक संस्थानों की सुदृढ़ता भारतीय गणतंत्र की स्थिरता का आधार हैं, तो वहीं आर्थिक क्षेत्र में औद्योगीकरण, कृषि संरचना का विकास तथा वित्तीय सुधार जैसे प्रयास विकास के आवश्यक तत्व हैं।

सामाजिक स्तर पर विविधता को स्वीकृति एवं समरसता के साथ जोड़ने का प्रयास करना आवश्यक है। लैंगिक, धार्मिक एवं क्षेत्रीय भिन्नताओं के बीच समन्वय स्थापित करना तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना राष्ट्र की समृद्धि और स्थिरता के लिए अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा और मानव पूंजी का सशक्तीकरण, साक्षरता का विस्तार तथा सामाजिक और आर्थिक भेदभाव का न्यूनतम स्तर पर लाना एक दीर्घकालीन कार्यक्रम का हिस्सा है। सुरक्षा और आंतरिक शांति की सुरक्षा और विदेश नीति के संतुलन में भी निरंतर सतत प्रयास करने की आवश्यकता है। क्षेत्रीय अस्थिरता का सामना करने के लिए सामरिक स्थिरता एवं पड़ोसी देशों के साथ सकारात्मक संबंध बनाना महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान–तकनीक का प्रयोग, सूचना–प्रौद्योगिकी का विकास, सतत विकास एवं पर्यावरण संरक्षण जैसी दिशा में किए गए प्रयास भारत को आत्मनिर्भर और प्रतिस्पर्धी राष्ट्र बनाने में सहायक साबित हुए हैं।

प्राप्त चुनौतियों का समाधान करने के लिए दीर्घकालीन, समावेशी एवं प्रभावी नीति–निर्धारण आवश्यक है। सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन, स्थायी विकास प्रक्रिया एवं सामाजिक समर्थन के माध्यम से भारत अपने विविधतापूर्ण एवं जटिल समाज में समरसता, समृद्धि और सुरक्षा की ओर निरंतर अग्रसर है। इन प्रयासों से ही भारत का आत्म–निर्माण सफल हो सकेगा और विश्व में अपनी उचित स्थिति स्थापित कर सकेगा।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ

1. सिंह, स. (2019). भारत की राष्ट्रीय एकता एवं सुरक्षा की चुनौतियाँ. Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika, 6(6).
2. देसाई, ए. आर. (2014). भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि. ट्रिनिटी प्रेस।
3. सिंह, स. भा. (2013). राष्ट्र के समक्ष चुनौतियाँ. Global Research Analysis International, 2(11).
4. सिंह, ए. पी. (2014). भारत में राष्ट्रवाद. ओरिएंट ब्लैकस्वान।
5. गुहा, र. (2007). गांधी के बाद का भारतरू विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का इतिहास. पिकाडोर।

6. मजूमदार, जी. (1968). भारतीय नवजागरणरू प्रेरणा तथा आंदोलन. साहित्य सदन।
7. चंद्र, ब. (2015). आज़ादी के बाद का भारत. दिल्ली विश्वविद्यालय।
8. राय, स. म. (2013). भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय।
9. सिंह, अ. (2012). भारत का मुक्ति संग्राम. ग्रंथ शिल्पी।
10. पाण्डेय, डी. (2015). आधुनिक भारत का इतिहास. मोतीलाल बनारसीदास।

Cite this Article

'रणधीर कुमार', "स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय राष्ट्र–निर्माण की चुनौतियाँ', Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:10, October 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/

DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i1000018

Published Date- 05 October 2025